Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 4 | ISSN : 2581- 6306

उपनिषदों में शिक्षा सिद्धान्त

ममता

असि. प्रोफेसर, शिक्षापीठ, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालय, नवदेहली।

Article Info
Volume 4, Issue 4
Page Number : 79-82
Publication Issue :
July-August-2021
Article History
Accepted : 03 July 2021
Published : 10 July 2021

शोधसारांश– उपनिषदिक शिक्षा किसी काल विशेष या जाति विशेष की शिक्षा प्रणाली नहीं है अपितु उसके शिक्षा सिद्धान्तों का प्रयोग सार्वकालिक है। इस शिक्षा के द्वारा समाज को मूल्ययुक्त शिक्षा प्रदान की जा सकती है ।

मुख्य शब्दः– उपनिषद्, शिक्षा, सि द्धान्त, समाज, मूल्य, वाङ्मयः।

वैदिक वाङ्मय की श्रृंखला में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद ग्रन्थों को महत्त्व दिया जाता है। विषय की दृष्टि से वेदों के प्रमुख तीन भाग है – कर्म, उपासना और ज्ञान। कर्म विषय का प्रतिपादन संहिता एवं ब्राह्मण भाग में हुआ है। उपासना भाग का संहिता तथा आरण्यक भाग में वर्णित है और तीसरे ज्ञान भाग का प्रतिपादन करने वाला उपनिषद् है जो कि मोक्ष साधन का मार्ग बताते हैं। मुक्तिकोपनिषद के अनुसार उपनिषदों की संख्या 108 है।[1] उपनिषदों की संख्या पर विद्वानों के मतभेद पाये जाते हैं। शंकराचार्य ने इनमें से सर्वाधिक महत्व 11 उपनिषदों पर भाष्य लिखे है।

उपनिषद शब्द की व्युत्पत्ति है – उप+नि+षद्, जिसका अर्थ होता है समीप बैरुना अर्थात गुरु के चरणों के समीप बैठकर अध्ययन करना। प्रो. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने अपने ग्रन्थ 'प्रमुख उपनिषद' में "व्यवधान रहित सम्पूर्ण ज्ञान" उपनिषद शब्द का अर्थ बताया है।[2] उपनिषदे ब्रह्मविद्या से सम्बन्धित है। उपनिषद की तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा एवं तर्कमीमांसा से शिक्षा के सभी अंगो पर विचार किया जा सकता है। उपनिषदे शिक्षा की विशिष्ट विधि के रूप में सम्पूर्ण विश्व को उचित पथ प्रदर्शक के रूप में कार्य करती है।

शिक्षा का सम्प्रत्यय - उपनिषदों का तात्त्विक विवेचन संवाद के रूप में है, जिसमें शिष्य प्रश्नोत्तर विधि के माध्यम से शंका समाधान करते है। गुरु केवल उन शिष्यों को उपनिषदों में छुपे रहस्यों का ज्ञान देते है जो जिज्ञासु होते है। इस परम्परा से शिक्षा सम्बन्धी तीन अर्थ स्पष्ट होते है –

1. छात्र को ज्ञान के लिए स्वयं प्रयास करना होता है।
2. प्रत्येक विद्यार्थी अपनी योग्यता, क्षमता एवं आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा ग्रहण करता है।
3. गुरु ज्ञान प्रक्रिया का अभिन्न अङ्ग होता है, जो केवल योग्य विद्यार्थी को ही ज्ञान प्रदान करते हैं।

[1] मुक्तिकोपनिषद – प्रथमोऽध्याय ।

[2] डॉ. राम शकल पाण्डेय – पाश्चात्य एवं भारतीय शिक्षा दर्शन, पृष्ठ –186 ।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

शिक्षा के उद्देश्य - उपनिषदों के अनुसार मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य है आत्मानुभति । परमानन्द आत्मा का अविच्छिन्न लक्षण है। तैत्तिरीय उपनिषद् में आनन्दमय उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जिन सोपानों का उल्लेख किया गया है, वे ही सोपन शैक्षिक उद्देश्यों का उत्क्रम माने जा सकते है –

1. अन्नमय कोष – शारीरिक विकास करना।
2. प्राणमय कोष – नैतिक एवं चारित्रिक विकास करना।
3. मनोमय कोष – मानसिक विकास करना।
4. विज्ञानमय कोष– बौद्धिक विकास करना।
5. आनन्दमय कोष – आत्मानुभूति करना।

इस प्रकार आनन्दमय कोष में आत्मानुभूति करना शिक्षा का सर्वोच्च लक्ष्य है। अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रारम्भिक लक्ष्य को नकारा नहीं जा सकता, बल्कि अन्तिम लक्ष्य सोपान का एक अंग है। कठोपनिषद के अनुसार 'श्रेयस' एवं प्रेयस[3] भिन्न–भिन्न है। श्रेयस के लिए प्रेयस की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

शिक्षा की पाठ्यचर्या - मुण्डकोपनिषद में दो प्रकार की विद्याओं की बात कही है – "परा चैनापरा च।"[4]

अपरा विद्या के अन्तर्गत ऋग्वेद – यजुर्वेद – सामवेद – अथर्ववेद – शिक्षा – कल्प – व्याकरण – निरुक्त –छन्द – ज्योतिष आते है।[5]

अपरा विद्या माध्यम से ही परा विद्या को प्राप्त कर सकते है ।

उपर्युक्त उद्देश्यों के अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अन्नमय, प्राणमय, मनोमकय, ज्ञानमय कोष का उचित विकास किया जाना अत्यावश्यक है। उपनिषदों के अनुसार मनुष्य के विकास के लिए पाठ्यचर्या में शरीर विज्ञान, योग विज्ञान, व्यवसाय, जीव विज्ञान, नीतिशास्त्र, भाषा, साहित्य, गणित, धर्म, दर्शन, तर्कशास्त्र को स्थान देना चाहिए।

शिक्षण विधियाँ- उपनिषदों में विभिन्न प्रकार की विधियों का प्रयोग किया गया है, परन्तु शिक्षार्थी स्वयं ही ज्ञान का आत्मीकरण करता है। जिज्ञासु शिष्य प्रश्न पूछता है और गुरु उसके प्रश्न का उत्तर देता है। उसकी समस्या–समाधान करने के लिए अनेक युक्तियों का प्रयोग करता है।

1. **प्रश्नोत्तर विधि** - प्रत्येक उपनिषद में इस विधि का प्रयोग किया गया है। जिज्ञासु शिष्य प्रश्न पूछता है और गुरु उत्तर देता है। इसे समस्या समाधान विधि कहते हैं।
2. **सूत्र प्रणाली** - ज्ञान को संचित रखने तथा स्मृति से बनाए रखने के लिए सूत्र – भाषा का प्रयोग आवश्यक होता है।
3. **प्रतिगमन विधि** - शिष्य को सार तत्त्व की तरफ गमन कराना ही इस विधि का प्रयोग किया जाता है।
4. **कथा विधि** - इस विधि के प्रयोग से मूल्य निर्मित किये जाते हैं।
5. **व्याख्या विधि**- विषयवस्तु में स्पष्टता लाने के लिए उदाहरण दृष्टान्त आदि का प्रयोग करके व्याख्या विधि का प्रयोग किया जाता है।

[3] कठोपनिषद – प्रथमोऽध्याय – द्वितीयवल्ली – द्वितीय मन्त्र। (1/2/2)

[4] मुण्डकोपनिषद – प्रथममुण्डक – प्रथम खण्ड – चतुर्थ मन्त्र । (1/1/4)

[5] मुण्डकोपनिषद – प्रथममुण्डक – प्रथम खण्ड – चतुर्थ मन्त्र । (1/1/5)

6. **विचार विमर्श एवं तर्क विधि** - इस विधि के प्रयोग से गुरु तथा शिष्य किसी समस्या पर विचार–विमर्श करने तर्क विधि के द्वारा किसी समाधान पर पहुँचते है।
7. **संश्लेषण-विश्लेषण विधि-** विश्लेषण विधि में समस्या के विभिन्न पक्षों पर पृथक–पृथक भिन्न–भिन्न दृष्टियों से विचार किया जाता है। संश्लेषण प्रणाली उसकी पूरक प्रणाली है।

छात्र एवं शिक्षक - उपनिषदों में छात्र की संकल्पना जिज्ञासु के रूप में की गयी है। छात्र स्वयं ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु की खोज करता है। गुरु किसी शिष्य को ज्ञान तभी प्रदान करता है जब वह उस ज्ञान के योग्य होता है। गुरु को विवश नहीं किया जाता कि प्रत्येक विद्यार्थी को ज्ञान दें। गुरु छात्र को स्तरानुसार ज्ञान प्रदान करता है। कठ–उपनिषद[6] में गुरु शिष्य सम्बन्ध अद्‌भुद बताया गया है –

सहनाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ।[6]

गुरु शिष्य को केवल आध्यात्मिक विकास ही नहीं कराता, बल्कि पञ्च कोषों के विकास के लिए भी प्रयत्न करता है। विद्यार्थी और अध्यापक दोनों ब्रह्मचर्य के साथ–साथ सदाचरण का अभ्यास करते थे। केनोपनिषद में शिष्य की तीन विशेषताएं बतायी गयी है –

i) बाह्य ज्ञान से असन्तुष्ट ।
ii) जिज्ञासु मन वाला होना।
iii) निरपेक्ष तत्त्व का साक्षात्कार करना।

अनुशासन - उपनिषदों में छात्र के स्वानुशासन पर बल दिया जाता है। छात्र को जिज्ञासु, गुरु के प्रति श्रद्धा, धर्म सम्मत आचरण करने वाला होना चाहिए। शिक्षार्थी जिज्ञासु प्रवृत्ति होगा तभी आत्म प्रत्यय का विकास कर पायेगा और उसके पश्चात ही आत्म संयम आ सकता है। इस प्रकार अनुशासन के तीन[7] तत्त्व माने गए हैं –

1. ज्ञान प्राप्ति के लिए उत्कृष्ट अभिलाषा।
2. आत्म प्रत्यय का विकास।
3. आत्म संयम।

विद्यालय - उपनिषद काल में गुरुकुल व्यवस्था थी। विद्यार्थी का जीवन अनुशासनयुक्त था। गुरु के सानिध्य में दिनचर्या सुव्यवस्थित होती थी। प्रत्येक कार्य को समय प्रतिबद्धता में रहकर किया जाता था। इससे विद्यार्थी का आध्यात्मिकता के साथ–साथ शारीरिक–मानसिक– सामाजिक–बौद्धिक – व्यावसायिक मूल्यों का भी विकास होता था। प्रत्येक उपनिषद का प्रारम्भ जिज्ञासा से हुआ है। जिज्ञासा छात्र की प्रवृत्ति होती चाहिए तभी तत्त्व तक पहुँच पाएगा। गुरुकुल व्यवस्था का उदाहरण कई उपनिषदों से मिलता है। मुण्डकोपनिषद महर्षि शौनक गुरु अङ्गिरा के पास ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिए गए।'[8] बृहदारण्यक गुरु अपने आश्रम में ही शिक्षा देते थे। छान्दोग्य उपनिषद में सत्यकाम का भी उदाहरण मिलता है। कठोपनिषद में नचिकेता 'यम' के स्थान पर शिक्षा लेने पहुँचे। प्रश्नोपनिषद में पिप्लाद के पास सुकेश, सत्यकाम, गार्ग्य,

---

[6] कठोपनिषद– शान्तिपाठ ।

[7] डॉ. एल. के. ओड़, शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि – राजस्थान अकादमी द्वार प्रकाशित।

[8] मुण्डकोपनिषद – प्रथम मुण्डक – प्रथम–खण्ड – तृतीय मंत्र (1/1/2)

कौसल्य, भार्गव, कबन्धी ब्रह्मविद्या प्राप्त करने गए। इन सभी उदाहरण से स्पष्ट होता है कि गुरू गृह ही उपनिषद काल में शिक्षा के स्थान रहे।

गुरु शिष्यों को समापन समारोह में जीवन के लिए उपदेश देते थे।

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायन्माप्रमदः।
आचर्याय प्रियं धनमाह्ऽय प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः।
सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्।
कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूतै न प्रमदितव्यम्।
स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। ....

इन उपदेशो से गुरु परिवार हित, समाज हित, व्यक्तिगत हित सबकी रक्षा करते थे। इसीलिए गुरू प्रकाश है। जो विद्यार्थी के जीवन को प्रकाशित करता है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ –

1. लाल, रमन बिहारी (2017-18) - शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज-शास्त्रीय आधार, आर. लाल, बुक डिपो, मेरठ।
2. ओड, एल. के. (2010) - शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि (तेरहवाँ संस्करण)।
3. पाण्डेय, रामशकल (2009) - पाश्चात्य एवं भारतीय शिक्षा दर्शन, R. Lal Book डिपो, मेरठ।
4. उपनिषद - अङ्क - तेइसवां वर्ष का विशेषाङ्क - गीताप्रेस, गोरखपुर।
5. Pandey K. P (2005) - शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी।
6. पाल, हंसराज)2015 उच्च शिक्षा में अध्यापन एवं प्रशिक्षण की (प्रविधियाँ, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय।
7. गुप्ता, एस2005) .पी.) भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।